शैलेश मटियानी

प्रेत-मुक्ति

केवल पांडे आधी नदी पार कर चुके थे। घाट के ऊपर के पाट में अब, उतरते चातुर्मासा में सिर्फ घुटनों तक पानी है, हालाँकि फिर भी अच्छा खासा वेग है धारा में। एकाएक ही मन में आया कि संध्याकाल के सूर्य देवता को नमस्कार करें। जलांजलि छोड़ने के लिए पूर्वाभिमुख होते ही, सूर्य और आँखों के मध्य कुछ धूमकेतु-सा विद्यमान दिखाई दे गया। ध्यान देने पर देखा, उत्तर की ओर जो शूद्रों का श्मशान है, बौंड़सी, वहीं से धुआँ ऊपर उठ रहा है और, हवा के प्रवाह की दिशा में धनुषाकार झुककर, छिदिर-मंदिर बादलों का सा गुच्छा बनाता, सूर्य के समानांतर धूमकेतु की तरह लटक गया है!

ओम् विष्णुविष्णुविष्णु...

केवल पांडे के घुटने पानी के अंदर ही आपस में टकरा गए और अंजलि में भरा जल ढीली पड़ी उँगलियों में से रीत कर, नदी में ही विलीन हो गया। उनके अर्द्धचेतन में कही से एक आशंका तेजी से उठी - 'बेचारा किसनराम ही तो नहीं मर गया?'

किसनराम की स्मृति में होते ही अपने घुटने नदी के जलप्रवाह में प्रकंपित होते-से मालूम पड़े। पुरोहित पं. केवलानंद पांडे को लगा कि उनके और सूर्य के बीच में धूमकेतु नहीं, बल्कि उनके हलिया किसनराम की आत्मा प्रेत की तरह लटकी हुई है। कुछ क्षण सुँयाल नदी के जल से अधिक अपने ही में डूबे रह गए। किसनराम के मरे होने का अनुमान जाने कैसे अपना पूरा वितान गढ़ता गया। गले में झूलता यज्ञोपवीत, माथे में चंदन-तिलक और रक्त में घुला-सा जातीय संस्कार। बार-बार अनुभव हो रहा था कि ऊपर श्मशान में अछूत के शव की अस्थि-मज्जा को बहाकर लाती सुँयाल नदी का निषिद्ध जल उनके पाँवों से टकरा रहा है। हो सकता है, ऊपर से अधजला मुर्दा ही नीचे को बहा दिया जाए और वहीं पाँवों से टकरा जाए? ...नदी के तेज प्रवाह में लकड़ी के स्लीपर की तरह घूमते और बहते जाते शव उन्होंने कई बार देखे हैं। विशेषकर बनारस में संस्कृत पढ़ने के दिनों में।
हालाँकि इधर से सुँयाल पार करते ही, गाँव से लगा अरण्य, प्रारंभ हो जाता है। अब सूर्यास्त के आस-पास के समय, ऊँचे-ऊँचे चीड़-वृक्षों की छायाएँ पूर्व की ओर प्रतिच्छायित हो रही थीं। दूर ढलानों पर गाय-बकरियों के झुंड चरते दिखाई पड़ रहे थे। कुछ देर योंही दूर तक देखते, आखिर नदी पार करके अपने गाँव की ओर बढ़ने की जगह, केवल पांडे तेजी से इस पार ही लौट आए।

उन्हें लगा, आगे की ओर का पानी चीर सकने की क्षमता उनके घुटनों में रह नहीं गई। धुआँ देखने से पहले भी, आधी नदी पार करते में न-जाने इतने आकस्मिक-रूप से क्यों किसनराम की याद आई थी कि उन्हें लगा था, वो नदी के पाट को अपने पाँवों से ठीक वैसे ही चीर रहे हैं, जैसे किसनराम हल की फाल से खेत को चीरता है। अब भी, बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के अजीब-अजीब-सी कल्पनाओं पर केवल पांडे को हँसी आने को हुई, मगर आई नहीं।

किसनराम को लेकर जो कमजोरी उनके मन में है, वही पिछले कुछ समय से उन्हें लगातार दोचित्ता करती चली रही है। उसकी मृत्यु की आशंका से यों एकाएक जुड़ जोन के कारण ही, मन अपनी स्वाभाविक स्थिति खो बैठा है,

ही आखिर क्यों उनकी कल्पना के आकाश में आशंका का यह धूमकेतु एकाएक उभर आया है कि जरूर किसनराम ही मर गया होगा और उसी का शव जलाया जा रहा होगा! हो सकता है, चिता न जल रही हो, नदी के किनारे मछली मारने वालों ने ही आग जला रखी हो?

केवल पांडे का मन हुआ, किनारे का जल हाथों में लेकर उसे देखें। उन्हें याद आया, जब कभी हल जोतते-जोतते, बैल थामकर, किसनराम उनके समीप आ जाता था, सुर्ती फाँकते, उसके मैले चीकट कपड़ों से भी ठीक वैसी ही तीखी गंध फूटती मालूम पड़ती, जैसी सुर्ती की गाँठ तोड़ते में फैलती है। कहीं ऐसा न हो, पानी से भी वैसी ही गंध फूट आए? अपनी

किसनराम को रोते देखने का यह पहला अवसर था, अन्यथा उसकी खुश्क आँखों में तो सदैव एक दीन मुस्कराहट ही देखी थी उन्होंने। कठोर परिश्रम के क्षणों में पसीने से लथपथ उसकी देह देखने से भले ही अनुभूति होती हो कि क्या यह अपनी त्वचा में से आँसू बहाता होगा? ...और पांडे जी को तब भी तो विचित्र-सी कल्पना हो आती थी कभी-कभी कि किसनराम कहीं अभिशप्त इंद्र तो नहीं कि इसकी सारी देह में आँखें-ही-आँखें फूट आएँ? पसीना वह पोंछता भी कुछ इतने जतन से था, लगता था, गालों पर से निथरते आँसू पोंछ रहा हो। ऐसे में एकटक उसकी ओर देखते रहने पर, मुँह में कैसा खारा-खारापन-सा उमसने लगता था?

ऐसा उन्हें लगा और अब वो नदी पार करने की जगह, बिनसर पहाड़ की दिशा में, यानी उत्तर की ओर, किनारे-किनारे चलने लगे। श्मशान लगभग एक फलाँग दूर था, वहाँ से।

खुले मैदान की भुरीभुरी मिट्टी में रेंगती गर्भवती नागिन-जैसी नदी सुँयाल भी अब उलटी दिशा को लौटती अनुभव हो रही थी। सूरज की किरनों के पानी की सतह पर हवा से काँपने की स्थिति में नदी कैसे अपना प्रवाह पलटती-सी मालूम पड़ती है और तब किनारे-किनारे कुछ फासला रखकर चलते रहिए, तो चंद्रमा की तरह, नदी भी अपने साथ-साथ चलती दिखती है। ऐसे में, हो सकता है, इसी बीच किसनराम का शव अधजला ही बहा दिया गया हो, तो वह भी उत्तर की ओर वापस लौटने लगे?

कुछ दूर आगे बढ़ते ही सामने ही एक गहरा ताल दिखाई दिया, तो लगा, कहीं ऐसा न हो, शव यहाँ तक बह आया हो और मछलियाँ उसे नोच रही हों? एक बार गहराई तक उस ताल में झाँककर, केवल पांडे और भी तेजी से चलने लगे, ताकि आशंका का समाधान हो जाए, तो मन को विभ्रांति से मुक्ति मिले। धोती की काँछ को उन्होंने कंधे पर डाल लिया, ताकि नीचे झुककर ताल में झाँकने में सुविधा रहे।

सुँयाल कभी देखी हो किसी ने, तो वह जानता है कि कार्तिक के प्रारंभ में, जबकि बाढ़ की ऋतु व्यतीत हो चुकी होती है, तब इसका जल कितना पारदर्शी हुआ रहता है। लेकिन चूँकि अभी चातुर्मास को बीते कुछ अधिक समय नहीं बीता होता है, इसलिए आसानी से इसके प्रवाह में पाँव टिक नहीं सकते। और देखिए कि जैसे पहाड़ की कई औरतें चाँदी के रुपयों की माला पहने रहती हैं - कुछ दूर तक डोरी, फिर पहला रुपया। इसके बाद फिर कुछ दूर तक डोरी और फिर चाँदी का दूसरा रुपया - लगभग वैसा ही अंतराल सुँयाल नदी में है। उद्गम से कुछ दूरी तक नदी की सी आकृति, फिर पहला ताल; इसके बाद फिर कुछ दूर तक, वही प्रकृति के गले में की डोरी, और फिर दूसरा ताल - और यही सिलसिला, जब तक कि कोसी में समाहित न हो जाय।

केवल पांडे की जजमानी का भी कुछ ऐसा सिलसिला है कि कहा जाय कि लगभग जहाँ तक सुँयाल जाती है। किनारे की ऊँचील शिला पर से ताल में झाँकने लगे, तो असेला और पपड्डुवा मछलियों का ताल के तल में विचरण करना और छोटी-छोटी चिल्लों का पानी के भीतर से कंकड़ों की तरह पुटक्क करके सतह से भी एकाध बालिश्त ऊपर उछलकर, फिर पानी में ही गिरते हुए वृत्त-पर-वृत्त बनाना, देखते ही रह गए।

याद आया कि जब व्रतबंध न हुआ था, कभी-कभी ताल में किसनराम के साथ मछलियाँ मारते अन्य शूद्र हम-उम्रों के साथ स्वयं भी कूद पड़ते थे। घर में कोई मछली खाता नहीं था, लेकिन मैण लगी मछलियों को पकड़ने में जो आनंद आता था...! रामबाण के पत्ते कूटकर पानी में डाल दिए गए हैं। मेंड़ बँधे पानी में साबुन का सा झाग उतर आया है। ...और अर्द्धमूर्च्छित-सी मछलियाँ सतह पर चक्कर काट रही हैं! हथेलियाँ फैलाने पर ही पकड़ में आ जाती हैं।

केवलानंद पांडे और किसनराम की उम्र में विशेष फर्क नहीं। शायद, दो-तीन वर्ष बड़ा हो किसनराम, मगर केवल पांडे की तुलना में, बहुत जल्दी ही बूढ़ा दिखने लग गया। पैंसठवाँ वर्ष-पार करते हुए भी पांडे जी के गौर-प्रशस्त ललाट में का तिलक रेखाओं में नहीं डूबता है, मगर किसनराम की कमर झुक गई। बचपन से ही किसनराम को देखा, एक ही अरण्य में के वृक्षों के साथ-साथ आकाश की ओर बढ़ने की तरह।

किसनराम के पिता की तीन पत्नियाँ थीं और बहुत बड़ा परिवार। खाने-पहिनने को पूरा पड़ता नहीं था। दूसरों के यहाँ मेहनत-मजदूरी का अनवरत सिलसिला दिन-रात कंधों पर लदा रहता। पांडे जी को याद नहीं पड़ता, कभी उन्होंने किसनराम में किशोरावस्था की चंचलता या जवानी के उद्दाम आवेग को उसके चेहरे या उसकी आँखों से फूटता हुआ देखा हो। जब भी देखा, हल या हथौड़े-हँसिये की मूठ थामे, काम में जुटा हुआ देखा।

किशोरावस्था गाँव में गुजारकर, मिडिल पास करके केवल पांडे पहले मामा के यहाँ नैनीताल और फिर वहाँ से अपनी वाग्दत्ता के पिता के पास बनारस पढ़ने चले गए। नैनीताल से हाईस्कूल, बनारस से शास्त्री करके, फिर घर ही लौट आए। छोटे भाई सभी पढ़ रहे थे और पिताजी अत्यंत वृद्ध हो चुके थे। यजमानी बहुत बड़ी थी और उसे सँभालना आर्थिक और नैतिक, दोनों दृष्टियों से आवश्यक था।

पठन-पाठन का वृत्त पूरा करके सदैव के लिए घर लौटने पर पांडे जी को पता चला था, किसनराम से ही, कि इस बीच उसकी माँ मर गई और वह भी अपने मामा के यहाँ चला गया था। मामा लोहार था, मगर किसनराम सिर्फ किसानी या ओढ़गिरी जानता था और गरम लोहा पीटने में अपने दाएँ हाथ की ?अँगुलियाँ पिटवा बैठा। हाथ बेकार हो गया, तो मामा ने भी दुरा दिया ओर वहाँ से पत्नी को लिए-दिए ससुराल

चला गया। ससुराल वालों ने भी अपनी बेटी, यानी उसकी घरवाली भवानी, को तो रोक लिया, उसे अकेला विदा कर दिया। हाँ, भवानी के लिए यही तो कहा था किसनराम ने कि – 'गुसांईज्यू, उन डोमों ने मेरी घरवाली को रोक लिया।' ...यह नहीं कि 'अपनी बेटी' को।

मामा के यहाँ कुट गए दाएँ हाथ की तीन 'उँगलियाँ, धीरे-धीरे गलती हुई, बेकार हो गईं। शेष दो से सोंटा और बाएँ हाथ से हल की मूठ पकड़कर बैलों को ऊँची हाँक लगाते किसनराम की आवाज पांडे जी ने गाँव की सीमा में पहुँचते ही सुनी थी। और जब रास्ते में कुछ देर किसनराम के पास रुककर, उसका दुख-सुख पूछ लिया कि 'आशीर्वाद, किसनराम, कैसे हो? ठीक-ठाक?' तो लगा क जैसे अपनी सारी गाथा उन्हीं की प्रतीक्षा में छाती में दबाए था किसनराम। अवसर पाते ही प्रकट होता ही चला गया।

अपना व्यतीत बताने में जिस तरह धीरे-धीरे उसकी आँखें भरती चली आई थीं, लगता था, कहीं बहुत गहरे दबा विषाद कोहरे की भाँति ऊपर उठ रहा है। उसकी आँखों की आग थी, या जैसे कि बाँध बाँधकर ऊपर की ओर उठाए हुए पानी की सतह।

किसनराम को रोते देखने का यह पहला अवसर था, अन्यथा उसकी खुश्क आँखों में तो सदैव एक दीन मुस्कराहट ही देखी थी उन्होंने। कठोर परिश्रम के क्षणों में पसीने से लथपथ उसकी देह देखने से भले ही अनुभूति होती हो कि क्या यह अपनी त्वचा में से आँसू बहाता होगा? ...और पांडे जी को तब भी तो विचित्र-सी कल्पना हो आती थी कभी-कभी कि किसनराम कहीं अभिशप्त इंद्र तो नहीं कि इसकी सारी देह में आँखें-ही-आँखें फूट आएँ? पसीना वह पोंछता भी कुछ इतने जतन से था, लगता था, गालों पर से निथरते आँसू पोंछ रहा हो। ऐसे में एकटक उसकी ओर देखते रहने पर, मुँह में कैसा खारा-खारापन-सा उमसने लगता था?

लेकिन तब तक यह सुर्ती की गाँठ तोड़ने में फैलने वाली जैसी तीखी गंध उसमें से फूटकर नहीं आती थी। बनारस से लौट आने के बाद केवल पांडे ने देख था कि उम्र में बड़ा होने पर भी किसनराम उनके गोरे, बलिष्ठ और खुले हुए शरीर की तुलना में ऐसा लगता था, जैसे इतने वर्षों के बीच प्रकृति ने उस लोहे को गरम करके, परिस्थितियों की चोटों से पीट-पीटकर अपने अनुकूल बना लिया है। खेत जोतते, पेड़ काटकर गिंडे बनाते या हल जोतते, पत्थर तोड़ते में वह जैसे अपनी संपूर्ण ऐंद्रिकता में प्रकृति में समा जाता था।

पांडे जी को बार-बार वह अनोखा दृश्य याद आता है, जब चौदह वर्षों की उम्र में ही शादी हो जाने के बाद, किसनराम दुरगुन के लिए अपनी पत्नी को उसके मायके ले जा रहा था और वो मिडिल स्कूल से लौट रहे थे। छोटी-सी, ठिगनी-साँवली लड़की, गाढ़े हरे रंग का घाघरा और गुलाबी रंग का पिछौड़ा पहने, बड़े इतमीनान से बीड़ी पीते उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी। किसनराम ने 'महाराज' कहकर, जमीन में मत्था टेकते हुए पांडे जी को प्रणाम किया था, तो उसने जल्दी में बीड़ी को अपनी हथेली में ही घिस लिया था और फिर हँस पड़ी थी।

पांडे जी को हँसी आ गई थी। किसनराम भी हँस पड़ा – 'गुसाँई, हमारी कौम में तो सारे करम-कांड बचपन में ही सीख लेती हैं छोरियाँ।' और आखिर शरमाते-शरमाते पूछने लगा था कि शास्तरों के अनुसार किस उम्र तक आपस में खुलकर बातचीत करना निषिद्ध है।

'शास्तर' का उच्चारण करने में किसनराम का कंठ तब भी कुछ थरथरा गया था। पांडे जी बचपन से ही तीव्र बुद्धि के थे। समझ गए, किन्हीं सयानों की बात को गाँठ बाँधे हुए है। भोले-निश्छल स्वभाव के किसनराम के प्रति उन्हें शुरू से ही आत्मीयता-सी थी और एक झलक किसनराम की घरवाली की उन्होंने भी देख लिया था, एक हमउम्र की सी जिज्ञासा में। धीमे से कहा था – 'अरे, यार किसनराम! अभी तो खुद मैंने ही कोई ऐसा शास्त्र नहीं पढ़ा है। पिता जी संस्कृत पढ़ने काशी भेजने वाले हैं। दस-बारह वर्ष बाद बटुक शास्त्री बनने के बाद लौटने पर तुझे बताऊँगा कि इस मामले में शास्त्रों में क्या लिखा है?'

और तब कैसे हँस पड़े थे, वो दोनों एक साथ? जैसे कि अरण्य में के फूल हों। किसनराम की घरवाली के सिर पर निंगाले की डलिया थी – पीले पिछौड़े के छोर से ढकी हुई दुरगुन (गौने) की परियाँ रही होंगी उसमें और आलू के गुटने या गडेरी का साग!

कई वर्षों के बाद एक बार छुट्टियों में घर लौटे थे कुछ दिनों को, तो किसनराम से पूछा था उन्होंने कि – किसन, कोई संतान हुई या नहीं? और किसनराम के उत्तर से उन्हें लगा था, जैसे वह उसी दिन की प्रतीक्षा में है अभी, जबकि पांडे जी उसे शास्त्रों में लिखा उत्तर बताएँगे।

काशी से शास्त्री करके लौट आने के बाद भी, उनका मन वही प्रश्न पूछने को हो रहा था कि किसनराम की दुखांत गाथा से मन भर आया। ...और उन्होंने अनुभव किया, इस बार किसनराम की घरवाली ने अधजली बीड़ी को अपनी हथेली में घिस लेने की जगह, किसनराम के कलेजे के साथ घिसकर, बुझा दिया है और किसनराम के प्रति उनकी इस संवेदनशीलता कल्पना पर उसकी घरवाली कहीं अदृश्यमान तौर पर उपस्थित-सी खिलखिला रही है।

बचपन बीतते-न-बीते ही शादी हो गई थी किसनराम की और पूरी तरह सयाना होने-होने तक में ही संबंध टूट भी गया। उन दिनों किसनराम अकेला ही रहता था।

अनेकों के मना करने के बावजूद पांडे जी के पिता जी ने किसनराम को ही अपना हलिया रख लिया था। हलिया रख लेने के बाद, खुद उन्होंने तथा पांडे जी की माँ ने किसनराम से कहा था – 'किसनराम, पहली तो विश्राम लेने को डाल पर आकर बैठी हुई -जैसी भुर्र उड़ गई, अब तू क्यों उसके लिए जोग धारण कर रहा है? अरे, तू ब्याह कर लेता, तो हमारी खेती भी कुछ और ज्यादा सँभलती। बिना जोड़ी का बैल तक नहीं खिलता, रे! तू तो हलिया है। नहीं करता दूसरा ब्याह, तो पहली को ही लौटा ला!'

किसनराम भली-भाँति जानता था, एक तो बिन घरवाली का हलिया वैसे ही पूरा रम नहीं कर पाता गुसाँइयों के खेत में, उस पर उसका तो दायाँ हाथ भी पूरा नहीं लगता है। लेकिन भवानी? शेष जीवन में उसके पुनरागमन की संभावना अब सिर्फ कल्पना में ही हो सकती थी। तब आखिर उसने एक दिन हाथ जोड़कर अपनी अनुपयोगिता को स्वीकार लिया था और अपने सौतेले 'बौराणज्यू, मैं अभागा तो हाथ से झड़ी लोभ ही नहीं लौटा पाया, कलेजे से झड़ चुकी कैसे लौटाऊँ?'

और उन दिनों गाँव-भर में यह बात फैल गई थी कि सयानी औरत का मन भी कैसा कोमल होता है, माँ का जैसा। खुद कुसमावती बहूरानी ने ही अपने हाथों से किसनराम के आँसू पोंछ दिए।

ब्रह्मणी, वह भी पुरोहित घराने की ओर अपने हाथों शूद्र के आँसू पोंछे, लेकिन

भैरव पांडे जी ने ही क्या कहा थ कि वह अशुद्ध होना नहीं, शुद्ध होना है। केवल पांडे के पूछने पर कुसुमावती की आँखें फिर गीली हो आई थीं। बोली थीं – 'दुख सभी का एक होता है, केवल! मैंने आँसू पोंछे, तो मेरे पाँवों के पास की मिट्टी उठाकर, कपाल से लगाते हुए बोला था किसनराम – बौराणज्यू, पारसमणि ने लोहे का तसला छू दिया है, मेरे जनम-जनम के पापों का तारण हो गया है।– शूद्र में जनमा है, मगर बड़ा मोह, बड़ा वैराग्य है किसनिया में। भवानी ने तो अपना नाम गारत कर दिया। इस भोला भंडारी को उजाड़कर गई।

पांडे जी अनुभव करते रहे थे कि कहीं भवानी के प्रति किसनराम में अति मोह था और इसलिए ही है इतना विराग। उन दिनों हफ्ते-हफ्ते किसनराम अपने कपड़े भी धो लेता था। भोजन भी नित्य समय पर कर लेता था। खेतों में काम होता, तो पांडे जी के घर से ही रोटियाँ जाती थीं और विनम्रतापूर्वक किसनराम केवल पांडे की बहू से कह देता था – 'बौराणज्यू, रोटियाँ मुझे टैम से ही दे देना।'

एक दिन, खेत जोतने से निबट कर, किसनराम सुँयाल के किनारे कपड़े धो रहा था। लँगोटी पहनकर, शेष कपड़े सूखने डाल रखे थे कि यजमानी से लौटते पांडे जी आए थे। उनके नदी पार करते समय वह जल्दी-जल्दी पानी से अलग हट गया था कि उसके पाँवों का छुआ जल उन्हें न लगे। पांडे जी ने यजमानी से मिली मिठाई में से कुछ मिठाई उसे दी थी और कहा था, 'किसन, अच्छा नहीं किया भवानी ने। नहीं तो, तुझे अपने हाथों से खाना पकाने और कपड़े धोने से मुक्ति मिलती। ...और तू-मैं तो साथ मछलियाँ पकड़ते थे – अब तू यों नदी छोड़ के अलग क्यों होने लगा? इतनी दूर तक छूत मैं नहीं मानता, रे!'

किसनराम के हाथ जुड़ आए थे और ओठों पर हल्की-सी हँसी – 'महाराज, जिस दिन बड़ी बौराणज्यू की सोने की छड़ी-जैसी उँगलियों का स्पर्श पा लिया मेरी आँखों ने, उस दिन से कलेजे की जलन से कुछ मुक्ति मिल गई, इतना ही बहुत है। नहीं तो कहाँ अपवित्र – कहाँ पवित्र...'

यों ही वर्षों बीतते गए। केवल के पिता भैरव पांडे जाते रहे, फिर कुसुमावती बहू भी। धीरे-धीरे किसनराम की कमर भी झुकने लगी, मगर हल उसने नहीं छोड़ा। जब तक खुद वह हल नहीं छोड़े, तब तक हलिया न बदला जाए, केवल पांडे निर्णय कर चुके थे। जरूरत पड़ने पर रोजाना मजदूरी देकर खेत जुतवा दिए जाते, मगर किसनराम को कोई नहीं टोकता था। केवल पांडे की पत्नी चंद्रा बहूरानी भी अपनी सास की-सी सहानुभूति उसके प्रति रखती थीं।

कभी-कभी किसनराम कृतज्ञ भाव में कह देता कि –'बड़ी बहूरानी जी की तो देह-ही-देह गई है, आत्मा तो छोटी बहूरानी में समा गई।' ...और ऐसा कहने के बाद, बहुधा, वह पांडे जी से आत्मा-परमात्मा के संबंध में तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगता था – 'महाराज, शास्तरों में तो आत्मा-परमात्मा के ही मंतर लिखे हुए रहते हैं न? आपके चरणों का सेवक ठहरा, दो-चार मंतर मेरे अपवित्तर कानों में भी पड़ जाएँ, तो मेरी आत्मा का मैल भी छँट जाए। क्या करूँ गुसाँई। घास खाने वाले पशु बैल नहीं हुए, अनाज खाने वाला पशु किसनराम ही हो गया। ...आपका जनम-जनमांतरों का सेवक हुआ मैं गुसाँईज्यू! दो-चार मंतर ऐसे मार दीजिए इस शरणागत किसनराम के फूटे कपाल में भी कि...'

'कि' से आगे क्या, इसे सिर्फ उसकी आँखों में ही पढ़ा जा सके, तो पढ़ा जा सके। तुरंत बात बदलता पूछने लगा था कि – 'महाराज, मरने के बाद आत्मा कहीं परलोक को चली जाती है, या इसी लोक में भटकती रह जाती है?'

चौरासी लाख योनियों में एक योनि प्रेतात्मा-योनि भी होती है, यह जानने के बाद से किसनराम और भी अधिक जिज्ञासु हो गया था कि आत्मा की इच्छा न होने पर भी क्या देह मात्र की इच्छा से प्रेत-योनि मिल सकती है...?

जब यजमानी में नहीं जाना होता था, तो पांडे जी खेतों में चले जाते थे। उन्हें इस बात का बोध भी था कि जब चंद्रा बहूरानी खेत में होती हैं, तो किसनराम एकदम दत्तचित्त होकर काम करता रहता है, मगर जब पांडे जी खुद होते हैं, तो बार-बार सुर्ती फाँकने के बहाने, उनसे तरह-तरह की बातें पूछने लगता है।

पांडे जी किसनराम के प्रति कठोर नहीं हो पाते थे। जैसी बहकी-बहकी बातें वह इन दिनों करने लगा था, यही भासित होता दिखता कि किसनराम निरंतर अंतर्मुखी होता जा रहा है। आँखें उसकी इतनी धँस गई थीं अंदर कि मरने के बाद तालाब में डूबी पड़ी मछली-जैसी कोई चीज उनमें चमकती लगती थी और पांडे जी को लगने लगा था कि वह उसकी मृत्यु का पूर्वाभास है क्या?

औरत-संतान-हीन लोगों की इस लोक से मुक्ति नहीं हो पाती है और वे रातभर मशालें हाथ में थामे, अपने लिए पत्नी और संतति खोजते, कायाहीन प्रेतरूप में भटकते रहते हैं 'टोले' बनकर – ऐसा कभी पांडे जी ने ही उसे बताया था। साथ ही यह भी कि उच्च जाति के लोग जो प्रेत योनि में ज्यादा नहीं जाते हैं, औरत-संतति से वंचित रहने पर भी, उसका कारण यह है कि उनकी सद्गति शास्त्रोक्त-पद्धति से हो जाती है। यह सबकुछ जानने के बाद से किसनराम निरंतर उनसे 'सद्गति' के बारे में तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगा था।

अभी कुछ ही दिन पहले उसने फिर पूछा था कि खुद प्रेत-योनि में भटका जाए, या कि जिस पर तृष्णा रह गई हो, उस पर प्रेत-रूप में छाया चली जाए, तो इससे मुक्ति का उपाय क्या है?

कई बार के पूछने पर, किसनराम कुछ खुला था – 'महाराज, आप तो मेरे ईष्ट देवता-सरीखे हैं, आपसे क्या छिपाना। इधर शरीर बहुत कमजोर हो चला। समय से खा नहीं पाता हूँ। वात-पित्त बढ़ गया है, ठीक से आँख भी नहीं लग पाती और नहाने-कपड़े धोने की शक्ति अब रही नहीं, गुसाँईज्यू! ...और जब-जब भूख से पेट जलता है, जब-जब खाँसी और चड़क से देह टूटने को हो आती है और इधर-उधर झाँकने पर सिर्फ अपनी ही दुर्गंध, अपनी ही प्रेत-जैसी छाया घेरने लगती है, तो पापी चित्त बस में नहीं रहता, गुसाँईज्यू! जिसे जवानी के दिनों में कभी गाली नहीं दी, उसे अब मरते समय न जाने कैसी भयंकर और पलीत गालियाँ बकने लग जाता हूँ। आत्मा फाँसी के फंदे पर लटकी हुई-सी धिक्कारती रहती है – अब मसानघाट की तरफ जाते समय अपनी घरवाली को रौंड़-पातर मत कह, रे कसाई!' ...मगर ये दो ठूँठ उँगलियाँ चरस भरी बीड़ी-जैसी सुलगती मेरे कपाल को दागती रहती है, कि 'अरे, पातरा! तूने जो मेरा कलेजा ही नहीं निकाल लिया होता तो आज इस वृद्धावस्था में तू नहीं... कोई और तो होती ...गुसाँईज्यू, कहीं मैं प्रेत बन गया तो?'

'किसनराम, भवानी को तू भूला नहीं है, रे! जैसी दगा वह कर गई तेरे साथ, किसी और के साथ करती तो वह थू-थू थूकता और दूसरी ले आता, मगर तेरा मोह तो घटा नहीं, विषाद चाहे जितना बढ़ा हो। तेरी गालियाँ पिशाच की नहीं, दुखी मनुष्य की हैं।'

गुसाँईज्यू, डाल-पात टूटा वृक्ष तो फिर से पंगुर जाता है, मगर जड़ से उखड़ा क्या करे? जब तक हाथ-पाँव चलते रहे, टैम से पेट की आग बुझाना, टैम से मैले कपड़े धोना इसीलिए करता रहा कि नहीं कर पाऊँगा, भवानी के लिए गाली निकलेगी मुँह से। महाराज, आपे तो उसे पुरपुतली की तरह मेरे आगे-पीछे उड़ाता हुआ खुद ही देखा था? उसको गँवा देने के बाद कोई दूसरी सयानी औरत ले आता, तो लगता, आगे-पीछे झपट्टे मार रही है। ...महाराज आप भी कह रहे होंगे कि इस किसनुवा डोम की मति वृद्धावस्था में चौपट हो गई है,

शेष पृष्ठ –१०...पर

मगर मैंने उस पुरपुतली को कभी इतनी दूर कहीं उड़ाना चाहा, गुसयू!

पांडे जी को लगा था – इसकी धँसी हुई–सी आँखों में जो तालाब में की मछली–जैसी चमकती है, वह खुद तबका किसनराम ही अपनी भावुकता में डूबा पड़ा है, जब वह बीड़ी का जलता ठूँठ हथेली में घिस लेने वाली किशोरी भवानी को साथ लेकर काम पर निकलता हुआ शास्त्रों की व्यवस्था पूछता फिरता था कि...' महारात, शास्त्रों में घरवाली के संबंध को जनम–जनमांतर का संबंध माना गया है ना?'

अभी कुछ ही दिन पहले उसने कहा था – %महाराज, आजकल जो तड़प रहा हूँ, तो इसीलिए कि म्लेच्छ योनि का पहले ही ठहरा, ऊपर से यह संसारी कुटिल चित्त की हाय–हाय! गरुड़ पुराण सुनने का तो पहले ही हम नहीं ठहरा, फिर सुनाए भी कौन? कभी–कभी जंगल में आँखें बंद करके लेट जाता हूँ, गुसाँईज्यू, कि कोई आकाश में उड़ता गरुड़ पक्षी ही मुझे मुर्दा समझ करके, मेरे माथे पर बैठकर टिटकारी छोड़ जाए... महाराज, अपने तारण–तरण की उतनी चिंता नहीं, इसी ध्यान से डरता हूँ कि कहीं प्रेत–योनि में गया, तो उसे न लग जाऊँ? हमारी सौतेली महतारी में हमारे बाप का प्रेत आने लगा है, महाराज! उसके लड़के गरम चिमटों से दाग देते हैं उसे। वह नब्बे साल की बुढ़िया रोती–बिलबिलाती है। कहीं भवानी के लड़के भी उसे ऐसे ही न दागें? ...जिसे जीते जी अपना सारा हक–हुकम होते भी कठोर वचन तक नहीं कह सका कि जाने दे, रे किसनराम, पुतली–जैसी उड़ती छोरी है, जहाँ उसकी मर्जी आए, वहीं बैठने दे ...उसे ही मरने के बाद दागते कैसे देख सकूँगा? ...अच्छा, गुसाँईज्यू, अगर कोई आदमी जीते जी अपनी आँखें निकालकर किसी गरुड़ पक्षी को दान कर दे, तो वह प्रेत–योनि में भी अंधा ही रहता है, या नहीं?

पांडे जी अनुभव कर रहे थे, ज्यों–ज्यों किसनराम मृत्यु की ओर बढ़ रहा है, त्यों–त्यों भवानी एक रंग–बिरंगी तितली की तरह, उसके अंदर–ही–अंदर उड़ती हुई, उसे एक ऐसे विभ्रम की ओर ले जा रही है, जहाँ मन के बवंडरों के प्रतिरोध की क्षमता न देह में रह जाय, न बुद्धि में।

वे डरने लगे थे, कभी अपनी अंधभावुकता में किसनराम सचमुच न आँखें निकाल बैठे। उसकी धँसी हुई आँखों में झाँकने पर उनको लगता – किसनराम ने मछली पकड़ने के जाल को ऊपर से मूठ बाँधकर, नीचे की ओर गहराइयों में फैला दिया है और बार–बार उसकी अतृप्त कामनाएँ उस जाल में फँस कर छटपटाती हैं... बार–बार वह, अपना ही यह मायाजाल अंदर की ओर समेटने की कोशिश करता है... और तब उसकी आँखों में आस–पास की झुर्रियाँ ऐसे आपस में सिमट आती हैं कि लगता है, जाल की बँधी हुई मूठ एकदम कस दी गई है और डोरियों में भीगा पानी निचुड़ रहा है।

ऐसी आँखों को अपनी ही देह पर सहना कितना कठिन होता होगा, जिन्हें दूसरे तक न सह सकें? उस निरे अशिक्षित और अबोध किसनराम की आँखों की गहराई में जो चमक दिखाई देती थी, पानी के तल में मरी पड़ी मछली की सी चमक, उसे देखते में पांडेजी को यक्ष–युधिष्ठिर–प्रसंग याद आ जाता था।

उन्हें लगता – बिना अपनी प्रश्नाकुल आँखों के लिए तृप्ति पाए, यह किसनराम उन्हें छोड़ेगा नहीं। न जीते जी, न उपरांत। उन्होंने किसनराम से कहना शुरू कर दिया – %शास्त्रों में यह भी तो लिखा हुआ है कि जो व्यक्ति पवित्र मन से प्रायश्चित कर लेता है, वह अपनी मरणोत्तर–स्थिति में अवश्य ही स्वर्गवासी हो जाता है...।

किसनराम के प्रश्न पूछते ही, अब पांडे जी कह देते – किसनराम, तू तो एकदम निष्छल–निर्वैर मनुष्य है। तुझ–जैसे सात्विक लोग प्रेत–योनि में नहीं जा सकते। मगर इससे किसनराम के प्रश्न ही घटे थे, उसकी बेचैनी, उसका दुख नहीं। पहले अपनी जिस बेचैनी को वह प्रश्नों में बाँट देता था, अब वह जैसे चट्टान में से बूँद–बूँद रिसते जल की तरह उसके अस्तित्व में इकट्ठा होती जा रही थी। ...और पांडेजी को लगता था, किसनराम की यह बेचैनी यदि नहीं घटी, तो उसकी मुक्ति सचमुच कठिन होगी। उसे यदि नदी में बहा भी दिया गया, तो अपनी ही अर्थी के बाँस के सहारे टिके हुए शव–जैसी उसकी विक्षुब्ध आत्मा, सतह पर उतरकर, ऊर्ध्वमुखी हो आएगी। ...किसनराम की आँखों में मृत्यु की छाया दिखाई पड़ने लगी है और आँखों के रास्ते जिनके प्राण निकलते हैं, उनका चेहरा कितना डरावना हो जाता है?

सुयाँल के किनारे चलते–चलते अतीत के प्रवाह में होते पांडेजी को ऐसा लग रहा था, कोई उनकी पीठ पर लदी उस पोटली को नीचे धरती की ओर खींच रहा है, जिसमें यजमानी से मिली हुई सामग्री है। दूर के गाँव में एक वृद्ध यजमान की मृत्यु हो गई थी ओर तेरहीं का पीपल छुआकर, पांडेजी वहीं से वापस लौट रहे थे। पोटली में अनेक अन्य वस्तुओं के साथ, जौ–तिल भी थे और एक जोड़ी बर्तन भी। बाकी बरतन तो गति–किरिया के दिनों ले चुके थे, आज सिर्फ एक लोटा, एक कटोरा, एक चम्मच और एक थाली।

किसनराम के मरने पर, हो सकता है, उसके सौतेले भाई उसके थोड़े–से जो बरतन थे, उन्हें भी समेट ले गए हों? ...और, संभव है, अपनी हीन नीयत के कारण, मरे किसनराम के नाम पर कोई बरतन न लगाएँ? पांडेजी को याद आया, चंद्रा बहूरानी जो पानी का लोटा खेत में ले जाती थी, उसे किसनराम छूता नहीं था।

बहूरानी लोटे से पानी छोड़ती थीं, और वह दाईं हथेली ओठों से लगाकर, गटागट पीता था। तब भी कैसी जन्म–जन्मांतरों की सी मालूम देती थी उसकी प्यास? पानी में गटकने की आवाज कैसे साफ सुनाई पड़ती थी? गले की घुंडी कैसे लय में डूबती होती थी? ...सोचते–सोचते पांडेजी को लगा, जैसे किसनराम पीछे–पीछे चलता हुआ, उनकी पीठ पर बँधे लोटे को अपने ओठों की ओर झुका रहा है। पांडेजी के पाँव एकदम भारी–भारी हो आए।

उन्हें याद आया, यजमान के मरने से पहले यों ही तसल्ली देने को एक दिन उन्होंने किसनराम को यह आश्वासन दे दिया था कि उसके मरने पर वे खुद उसका तर्पण कर देंगे और तब किसनराम कुछ आश्वस्त हो गया था –'महाराज, आपके हाथ की तिलांजलि से तो मुझ अभागे के समस्त पापों का तारण हो जाएगा। मगर कहीं ऐसा तो नहीं, गुसाँईज्यू, कि उलटे आप जैसे पवित्र ब्राह्मण देवता से तर्पण कराने का कोई दंड भुगतना पड़े मुझे?'

पांडेजी भी जानते थे, किसनराम का तर्पण उनके लिए शास्त्र–विरुद्ध और निषिद्ध है, मगर उसे आश्वस्त करने का एकमात्र उपाय ही यही रह गया था। उन्होंने कह दिया – 'जाति तो मिट्टी की होती है, किसनराम! मिट्टी छूट जाने के बाद, सिर्फ आत्मा रह जाती है और आत्मा तो अछूत होती नहीं...।' मगर इस समय इन सारे तर्कों में जाने का अवसर है कहाँ? चित्त इसी दुविधा में हो गया है कि कहीं किसनराम मर गया हो, तो क्या वो अपना वचन पूरा कर सकेंगे?

मन–ही–मन केवल पांडे को अब आभास हुआ कि प्रार्थना करते जा रहे हैं – 'और चाहे जो मरा हो – किसनराम न मरा हो!'

गाँव में उन दिनों सिर्फ दो के ही मरने की आशंका ज्यादा थी, एक किसनराम और दूसरी उसकी सौतेली माँ!

केवल पांडे एक क्षण को तो संकोच में हुए कि यह किसनराम की सौतेली माँ के प्रति पूर्वग्रह करना तो न होगा कि किसनराम की जगह उसका मर जाना अच्छा मालूम पड़े? फिर इस मनोभाव में हो गए कि नब्बे से ऊपर गए को तो विदा होना ही है – आज नहीं तो कल।

भारी कदमों से चलते–चलते श्मशान तक आ पहुँचे, तो वहाँ सिर्फ अंतिम रूप से बुझती चिता शेष रह गई थी। मुर्दा फूँकने वाले जा चुके थे। श्मशान सूना पड़ा था। नदी के बहने की आवाज के साथ सन्नाटा भी बोलता मालूम पड़ता था। जैसे कि किसी के जा चुके होने का वृतांत सुनाता हो।

पांडे बाहरी आचार–संस्कार में शूद्रों को जितना अछूत समझते थे, भावना में नहीं। पिता और माँ से भी उन्होंने संवेदना और उदारता ही पाई थी, मगर परंपरागत सामाजिक–व्यवस्था में जितना उन्हें बाहरी आचार–व्यवहार को जीना पड़ता था, उतना अपने भावनाजगत का अवसर नहीं था। इस एकांत में भी अपने मंतव्य पर जाते हुए उन्हें एक सिहरन–सी जरूर हो आई।

किसनराम के संबंध में जिज्ञासा बढ़ती गई थी, मगर दूर से पूछ लेने में जो सुविधा समझी थी, अब वह भी नहीं रही थी। जानना चाहते थे, किसनराम ही था, या उसकी सौतेली माँ थी, या आकस्मिक–रूप से मरा कोई और, मगर दूर से देखने पर चिता में शव भी जलता दिखाई नहीं दे रहा था। संभव है, पूर्णदाह कर दिया गया हो? यह भी संभव है कि अधजला शव बहा दिया गया हो? लेकिन पूछें किससे? नदी से कि अरण्य से?

जिज्ञासा के तेज प्रवाह में पांडे थोड़ा आगे बढ़ गए। अजीब मनस्थिति उनकी हो गई। यह आशंका पाँवों को पीछे लौटा लेना चाहती थी कि कहीं दूर खेतों में काम करता या इस ओर आता हुआ कोई व्यक्ति श्मशान टटोलते देखेगा उन्हें, तो न–जाने क्या समझे। एक अछूत के शवदाह के बाद तो वहाँ आखिर खोज क्या रहे हैं? मगर जिज्ञासा जैसे भ्रमित चित्त को चारों ओर घुमा देती कि कहीं कोई ऐसा अवशेष – यानी किसनराम की सौतेली माँ का घाघरा–पिछौरा ही दिख जाए, जिससे आभास हो कि कोई औरत ही मरी है, और शंका टले। तभी एकाएक कोई कपड़ा उनके पाँव से लग गया और पांडे चौंककर, पीछे हट गए। देखा किसनराम की सी काली दोकलिया टोपी है, जिसे चंद्रा बहूरानी से रोटियाँ लेते में वह लोहे के तसले की तरह आगे फैला देता था! नहीं, इस टोपी को पहचानने में चूक नहीं हो सकती। इसमें और किसनराम के सिर में कोई अंतर नहीं। इस टोपी को किसनराम के सिर के बिना जरूर देख रहे हैं – लेकिन किसनराम का सिर तो इस टोपी के बिना कभी देखा नहीं!

किसनराम! ...ओमविष्णुर! ...केवल पांडे को लगा, तसले की तरह फैली हुई उस टोपी के पास ही किसनराम का प्रेत भी उपस्थित है और याचना–भरी आँखों से उन्हें घूर रहा है – 'महाराज!'

हे राम! ...दुख और विषाद में पांडेजी की आँखें गीली हो आईं। अब तक में अँधेरे में के साँप की तरह डोलती आशंका के प्रमाण–सिद्ध हो जाने से पाँव अपने–आप एकदम हल्के हो गए, जैसे घटना का घटित हो चुकना सारे भ्रमों से निर्भ्रांत कर गया हो। केवल पांडे थोड़ा पीछे लौट कर, फिर आगे निकल आए, गाँव की ओर जाने वाली सड़क पकड़ने के लिए। थोड़ी दूर और सुँयाल के किनारे–किनारे ही चलना था, मगर श्मशान–भूमि से जरा ऊपर पहुँचते ही, फिर पाँव भारी पड़ने लगे। लगा, किसनराम पीछे छूट गया है, और टोपी फैलाए हुए – आखिर क्या माँगना चाहता रहा होगा किसनराम अपने अंतिम क्षणों में? सिर्फ यही तो कि उसकी प्रेत–मुक्ति हो जाए? शायद, मरते समय किसी से कह भी गया हो कि पांडेजी को इस बात की याद दिला दी जाए कि किसनराम का तर्पण करने का आश्वासन दे रखा था उन्होंने!

उन्हें याद है, अंतिम कुछ दिनों अपनी मुक्ति की जो आश्वस्ति किसनराम की आँखों में आ गई थी, वह कुछ सामान्य न थी। प्रेतमुक्ति के इतमीनान में हो गए होने की प्रतिछाया उसके बोलने, सुनने, खाने, पीने और चलने, फिरने तक में झलकने लगी थी। अब वह आत्मपीड़ित नहीं, प्रशांत लगता था। उसके जर्जर शरीर में एक मद्धिम लय–सी आ गई थी। केवल पांडे का यह कहना कि एकांत में ही सही, वो शास्त्रोक्त विधि से उसका तर्पण कर देंगे – सुनकर वह विरागियों की सी सौम्यता में हो गया था। अब कहीं ऐसा न हो, उसकी मरणोत्तर–आत्मा यही खोजती फिरती रही हो कि पांडे उसका तर्पण करते भी हैं, या नहीं?

केवल पांडे ज्यों–ज्यों आगे बढ़ते जा रहे थे, लगता था, किसनराम उनको पीछे लौटा लेना चाहता है और इससे मुक्ति का एकमात्र उपाय यही है, उसका तर्पण कर दिया जाए! तमाम–तमाम दुविधाओं से मुक्ति का यही एक मार्ग शेष है। जाति–बिरादरी के लोगों की जानकारी में तो कुछ भी करना संभव नहीं। यहाँ इस सुँयाल–घाटी के एकांत में तो सिर्फ वह ईश्वर साक्षी रहेगा, जिसके लिए मनुष्य–मनुष्य सब एक हैं। न कोई डोम है, न कोई ठाकुर–ब्राह्मण। मगर श्मशान के समीप ही तर्पण करने पर कोई आता–जाता देखेगा, तो प्रश्नवाचक आँखों से घूरेगा। और कहीं यह अफवाह न फैला दे कि पैसे के लोभी ब्राह्मण अब चोरी–चोरी शूद्रों का पौरोहित्य भी करने लगे हैं?

थोड़ ही ऊपर, एक पतली धारा सुँयाल से मिल रही थी। पांडे जी आगे बढ़े और संगम के पास एक ऊँची शिला पर पोटली रख दी। पोटली खोलते में लोटा देवप्रेरित–सा बाहर को लुढ़क पड़ा। पांडे जी का मन भर आया। थोड़ी देर तक वो किसनराम के साथ बीते बाल्यावस्था के क्षणों की स्मृति में डूबे ही रह गए। आखिर धीरे से जल भरकर, उन्होंने नदी–किनारे की मिट्टी में वेदी–जैसी बनाकर, लोटा रख दिया। जिंदगी–भर तो यजमानों की हथेली से दान ही ग्रहण किया है, आज थोड़–सा दान अपने सेवक के नाम पर स्वयं भी क्यों न कर लें?

चिंतना में उदार होते–होते, पांडे यह भी भूल गए कि एक शूद्र का तर्पण कर रहे हैं। थाली–गिलास और कटोरा भी उन्होंने निकाल लिया। थाली में जौ–तिल डाल लिए। थोड़े–से कुश भी बीन जाए। सारी सामग्री ठीकर कर लेने के बाद, पहली तिलांजलि देने के लिए, 'किसनराम प्रेत प्रेतार्थ', कहते–कहते उनका मन हो आया, पीछे लौटकर श्मशान के पास पड़ी किसनराम की टोपी उठा जाएँ और उसी में जौ–तिल छोड़ दें – 'विष्णुविष्णु...'

किसनराम का तर्पण करके गाँव के एकदम समीप पहुँच गए, तो एकाएक ही केवल पांडे को याद आया कि कल ही उन्हें अपने पिता ही का श्राद्ध भी तो करना है? ...पहले दिन एक शूद्र का तर्पण करने के बाद फिर अपने धर्मप्राण और शास्त्रजीवी पिता का श्राद्ध! पांडे जी ने अपने हाथों की ओर देखा। लगा, अशुद्ध हो गए हैं। उद्विग्न होकर, अपने मुँह पर अँगुलियाँ फिराईं, तो वातावरण में सुर्ती तोड़ने की जैसी तीखी गंध व्याप्त होती अनुभव हुई।

पांडे सोच रहे थे, यों चोरी–चोरी शूद्र का तर्पण करने के बाद, बिना घरवालों से कहे–सुने उन्हें पिताजी का श्राद्ध कदापि नहीं करना चाहिए। स्वर्गस्थ पितर के प्रति यह छल अनिष्टकर ही होगा। जानते थे, अछूतों के प्रति तमाम उदारता के बावजूद, जातीय–संस्कार की निष्ठा और कट्टरता उनके पिता में प्रभूत थी।

जो शास्त्रसम्मत है, वही मानवीय भी है, ऐसा उनका मत था और इसे निबाहा भी। जिसने जीवन भर शास्त्र–विरुद्ध कोई कार्म नहीं किया, उसी का श्राद्ध अशुद्ध हाथों से कैसे किया जा सकता है?

गाँव समीप आता जा रहा था। मगर केवल पांडे बहुत थक गए थे। उन्हें भय लग रहा था, शुद्ध मन से श्राद्ध करने के लिए उन्हें सत्य बोलना ही पड़ेगा, फिर चाहे घरवालों और बिरादरी में कैसी ही अप्रिय प्रतिक्रिया क्यों न हो। उन्हें लगा, किसनराम की प्रेम–मुक्ति तो हो गई होगी, लेकिन अब पश्चाताप का प्रेत उनसे चिपट गया है।

किसनराम की याद आने पर माथे का पसीना पोंछते हुए, उन्होंने पुन: श्मशान की दिशा की ओर आँखें उठाईं। उन्हें लगा, अस्ताचलगामी सूर्य और उनके बीच में इस समय उनका अपना ही प्रेत लटका हुआ है। – और इसी अवसन्नता में वो कुछ देर वहीं पगडंडी के किनारे की शिला पर बैठे ही रह गए।

सौतेली माँ को फूँककर, घर को दूसरे रास्ते से वापस लौटते किसनराम ने केवल पांडे को ध्यान में डूबा हुआ–सा, उदास सड़क के किनारे बैठे देखा, तो परम श्रद्धाभाव में 'महाराज' कहते हुए, दंडवत में झुका।

जैसी कहीं अंतरिक्ष में से आती–सी पुकार को सुनकर, केवल पांडे ने चौंककर सामने की ओर दृष्टि की, तो किसनराम का नंगा सिर दिखाई दिया। बीच सिर में, जहाँ पर बाल नहीं रह गए थे, पसीने की बूँदें थीं। और केवल पांडे चकित से देखते ही रह गए।

किसनराम दोनों हाथ दंडवत में जोड़े, जमीन पर यथावत झुका ही था। 'जीता रहो' कहने को हाथ ऊपर उठाते हुए, केवल पांडे को लगा, जैसे आसमान में लटके किसी प्रेत के बंधन से अपने को मुक्त कर रहे हों।